प्रथम वर्ष

शाह गोविन्दजी वीरम फेक्टरी कम्पाउन्ड़, मोंढा रोड, औरंगाबाद

(सम्यग्ज्ञान प्रवेशिका) अभ्यास ३

❀ शुभाशीर्वाद ❀

तपस्वीरत्न, अचलगच्छाधिपति प.पू.आ.भ. श्री गुणोदयसागरसूरिश्वरजी म.सा.

❀ दिव्य कृपा ❀

आगम आराधिका बा.ब्र.प.पू. मुक्तिश्रीजी म.सा.

शासन प्रभाविका प.पू. जयलक्ष्मीश्रीजी म.सा.

मार्गदर्शिका- प्रेरक - सा.डॉ. जयदर्शिताश्रीजी म.सा. M.Sc., Ph.D.

सौजन्य : अ.सौ. लेखाबेन धनपतिभाई मोमाया - कच्छ बारोई - हाल जलगाँव

सूत्र - विधि और रहस्य

-: चैत्य वंदन विधि :-

जिनेश्वर परमात्मा के दर्शन करने वाले श्रावकों को दश त्रिक अवश्य धारण करनी चाहिये । उससे दर्शन शुद्धि होती है । तीन बार की जाने वाली आराधना त्रिक कहलाती है ।

दश त्रिक

१) निस्सीहि त्रिक :-

१) मंदिर में परमात्मा के दर्शन करने जाते समय घर संबंधी सभी प्रकार के सावद्य व्यापार का त्याग करना, उसे पहली 'निस्सीहि' कही जाती है. २) मन में प्रभु के दर्शन करने की ही दृढ भावना सहित मार्ग में यतनापूर्वक चलना तथा जिन मंदिर को देखकर पाँच अभिगम पूर्वक, जिनका वर्णन आगे आयेगा, जिन मंदिर की सीढीयों पर पैर रखते ही घर संबंधी तथा मार्ग संबंधी व्यापार का त्याग करना, वो

दूसरी'निस्सीहि' जानना ३) प्रभु की सत्रह भेदरुप द्रव्य पूजा करने के बाद भाव पूजा करने से पहले तीसरी ''निस्सीहि'' बोलकर चैत्यवंदन करना ।

२) प्रदक्षिणा त्रिक :-

ज्ञान, दर्शन तथा चारित्र की आराधना रुप जिन मंदिर के चारों और घूमकर तीन प्रदक्षिणा (परिक्रमा) देना ।

१) पहेली प्रदक्षिणा देते समय जिन मंदिर की भूमि को देखना और (आगे जिनका वर्णन आयेगा) उसके अनुसार चौर्यासी अथवा दश आशातना मेंसे कोई आशातना या अशुचि पदार्थ वगैरह हो तो उसे दूर करवाना २) दूसरी प्रदक्षिणा देते समय जिनमंदिर को नींव से लेकर कलश तक देखना और उसमें अगर कुछ भी तूट-फूट नजर आये तो उसे सुधरवाने के लिये प्रतत्न करना । ३) तीसरी प्रदक्षिणा देते समय जिनमंदिर रुप स्थावर तीर्थ के गुणों को हृदय में याद कर लेना ।

३) प्रणाम त्रिक :-

जिन मंदिर में तीन प्रदक्षिणा देने के पश्चात जिनप्रतिमा के सन्मुख आकर दोनों हाथ जोडकर मस्तक झुकाकर तीन बार प्रणाम करना ।

४) पूजा त्रिक :-

पूजा तीन प्रकार की है १) अंग पूजा २) अग्रपूजा ३) भाव पूजा

१) प्रभु के अंग पर शुद्ध जल, चंदन, वस्त्रयुगल, पुष्प, वासचूर्ण तथा आभूषण चढाना, वह अंग पूजा २) प्रभुजी के सामने धूप दीप करना, अखंड चाँवल, फल-नैवेद्य चढाना तथा अष्ट मंगल का आलेखन करना वह अग्रपूजा । ३) प्रभु के गुणगान पूर्वक विधि सहित चैत्यवंदन करना वह भावपूजा ।

५) अवस्था त्रिक :-

१) जल, चंदन, पुष्प, वस्त्र वगैरह से प्रभु की पूजा करते समय उनकी, जन्म समये मेरुपर्वत के उपर इंद्रो के द्वारा की गई स्नात्र अवस्था का चिंतन करना । २) मुकुट आदि आभूषण चढाते समय ''राज अवस्था'' का चिंतन करना । ३) चैत्यवंदन करने रुप भाव पूजा करते समय ''सिद्ध अवस्था'' का चिंतन करना ।

६) दिक्त्रय निरीक्षण वर्जन त्रिक :-

अन्य सभी विचारों को दूर करके एकाग्र चित्त से, दोंनों हाथ जोडकर, मस्तक पर लगाकर, मधुर वचनों से प्रभु के गुणों के स्तवन बोलते समय सिर्फ प्रभुजी की प्रतिमा के सन्मुख ही देखना और बाकी तीन दिशाओं में देखना नहीं, क्योंकि ऐसा करने से प्रभु का अनादर होता है ।

७) भूमि प्रमार्जन त्रिक :-

प्रभुजी की द्रव्य पूजा करने के बाद श्रावक और श्राविकायें भाव पूजा यानि चैत्यवंदन करते समय जीवयतना पूर्वक भूमि को दृष्टि से देखकर उत्तरासंग के किनारों से अथवा रुमाल से तीन बार भूमि प्रमार्जन करने के बाद खमासमण देकर चैत्यवंदन करना ।

८) वर्ण त्रिक :-

१) चैत्यवंदन करते समय भगवान के गुणगान रुप श्लोक काव्य वगैरह के ''अकार, ककार'' आदि अक्षरों का शुध्द उच्चारण करना वो ''वर्णालंबन'' । २) श्लोक तथा काव्यों का अर्थ कहना वो ''अर्थालंबन'' । ३) सूत्र और अर्थ दोनो का उच्चार करना, वो ''आलंबनालंबन'' ।

९) मुद्रा त्रिक :-

मुद्रा तीन प्रकार की है १) योग मुद्रा २) जिन मुद्रा ३) मुक्ता शुक्ति मुद्रा

१) दोनों हाथों की दस उंगलियों का एक दूसरे के अंदरोअंदर मिलाकर बंद कमल के जैसा आकार बनाने से तथा दोनों भुजाओं की कोहनीओं के पेट पर टिका कर रखने से योग मुद्रा होती है २) चैत्यवंदन करने के पश्चात 'सव्व लोए' का पाठ कहकर काउस्सग करते समय दोनों पैर समान रखकर दोनों के बीच चार अंगुल का अंतर रखना और दोनों एडियों के बीच उससे कुछ कम अंतर रखने से ''जिनमुद्रा'' होती है । ३) चैत्यवंदन में 'जय वीयराय' बोलते समय दोनों हाथ जोडना लेकिन हथेली को हथेली से न मिला कर पोला रखना सिर्फ हथेलियों का नीचला भाग तथा उंगलियों का अग्रभाग एक दूसरे से मिलाना, उल्लास पूर्वक जोडे हुए हाथों से 'जय-वीयराय' बोलने से 'मुक्ता शुक्ति' मुद्रा होती है ।

१०) प्रणिधान त्रिक :-

१) चैत्यवंदन करते वक्त शरीर के अशुभ व्यापार का त्याग करके हाथ जोड कर रहना २) मनमें अचिंत्य चिंतामणी समान प्रभु को स्थापित करना ३) मुख से मधुर वचनों से मनोहर गायन रुप प्रभु के गुणों की स्तवना करना ।

पांच प्रकार के अभिगम

जिनमंदिर में प्रवेश करते समय इस प्रकार से स्वयं के उपयोग में आनेवाली चार वस्तुओं का त्याग करना; १) छत्र २) चँवर ३) मुकुट ४) पुष्पों की माला आदि सचित्त पदार्थ ५) पाँचवा 'एक साडी उत्तरासंग' याने दोनों तरफ खुली किनारवाला, अखंड तथा एक पनेवाला, जिसका एक छोर दाहिनी भुजा के नीचे से निकालकर बायें कंधे पर से पीठ के भाग पर जाने देना तथा बांये कंधे पर से उत्तरासंग का एक छोर आगे की और लंबाकर रखना । आगे के छोर को अपने दोनों हाथों में रखकर जिनमंदिर में प्रवेश करते ही प्रभुजी को दूर से देखते ही, उस छोर सहित हाथ जोडकर प्रणाम करना फिर मुंह के आगे छोर रखकर 'नमो जिणाणं' कहना ।

जिन मदिर की दस मुख्य आशातना

१) जिनमंदिर में पान सुपारी आदि खाना ।
२) जिनमंदिर में पानी पीना ।
३) जिन मंदिर में भोजन करना ।
४) जिन मंदिर में चप्पल जूते पहनना ।

५) जिन मंदिर में स्त्री के साथ मैथुन सेवन करना ।
६) जिन मंदिर में शयन करना ।
७) जिन मंदिर में थूकना ।
८) जिन मंदिर में पेशाब करना ।
९) जिन मंदिर में मल त्याग करना ।
१०) जिन मंदिर में जुंआ खेलना ।

सात शुध्दियाँ

द्रव्य पूजा ''सात शुद्धियों'' का पालन करते विधिपूर्वक करना चाहिये । वो इस प्रकार है :-

१) अंगशुद्धि - मापसर थोडे पानी से स्नान कर शरीर शुद्ध करना ।

२) वस्त्रशुद्धि - पुरषो ने दो तथा स्त्रीओं ने तीन स्वच्छ वस्त्र पहनना ।

३) मनशुद्धि - स्थिर मन से पूजा करना ।

४) भूमिशुद्धि - मंदिरजी में से काजा, कचरा दूर करने के पश्चात ही सभी क्रियायें करना ।

५) उपकरण शुद्धि - दर्शन, पूजन के लिये स्थायी रखे हुये उपकरण - कलस, धूपदान, कंदिल, अंगलूछने, थाली, वाटकी वगैरह तथा पूजन के लिये लाये गये उपकरण - चंदन, केसर, फूल, धूप, अक्षत इत्यादि शुद्ध और स्वच्छ रखना ।

६) द्रव्यशुद्धि - जिनपूजा में द्रव्य न्याय से उपार्जन किया हुआ ही वापरना ।

७) विधिशुद्धि - पूजा प्रसंग के सभी द्रव्य तथा स्तुति-स्तवना से जिन पूजन शुद्धता पूर्वक करना ।

पूजा करनेवाले ने उपरोक्त सात शुद्धियों का पालन करना । फिर कपाल में, गले, छाती और नाभि पर इस प्रकार चार तिलक करना, फिर पूजा करना । फिलहाल सिर्फ कपाल पर तिलक करने का व्यवहार है ।

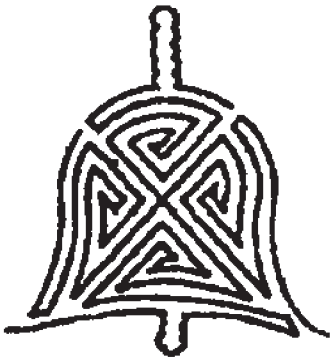

गुणोंका बगिचा

सुगंध सबको प्रिय है ।

सद्‌गुण सबको अच्छे लगते है । दुर्गुण किसीको भी पसंद नहीं पडते ।

सदगुणी सबके प्रियपात्र बनते है । जबकि दुर्गुणी पगपग पर तिरस्कार पाते है । किसी को भी अच्छे नहीं लगते ।

हमे कैसा बनना है ? जीवन को गुणोंसे अलंकृत करना है कि जैसे तैसे मिला हुआ जीवन बिताना है ।

जिसे जीवन सुंदर बनाना हो उसे जीवन में गुणों को विकसित किये बिना नहीं चल सकता, जीवन को बगिया बनाना पडेगा । स्वंय को माली बनना पडेगा । जीवन बगिया को स्वच्छ बनाकर खोज खोज के सुंदर गुणोंके पौधे लगाने पडेगे । उन पौधों की हिफाजत करनी होगी । संभालना होगा... विकसित करना होगा ।

सन्मार्ग का पथिक बनने के लिये महापुरुषोंने मार्गानुसारी के पैंतीस गुणों की अदभूत बात बतायी है । इन गुणोंके पाथेय बिना सन्मार्ग का पथिक बनना संभव नहीं । कदाचित इस पाथेय के बिना सन्मार्गपर प्रयाण भी कर दें पर उस मार्ग पर आगे बढ़ना और टिकाये रहना मुश्किल बन जाता है ।

नहीं, अब तो हमे सन्मार्ग पर बिना रुकावट के चलना है । अब हमें कहीं भी रुकना या गिरना नहीं है । अज्ञानता में अनंत भव बिगाड दिये हैं । अब तो सफलता एवं सिद्धि के सिवाय अन्य कुछ भी नहीं चाहिये ।

यदि ऐसाहि है तो चलो मार्गानुसारी के गुणों को प्राप्त करने के लिये पुरुषार्थ करें । प्रारंभ करने से पहले इन गुणों को बराबर समझ लें, उनकी आवश्यकता समझ लें । अठ्ठारह गुणों को जान लिया, अब प्रस्तुत है उन्नीस से लेकर पैंतीस गुणोंका संक्षिप्त परिचय....

१९. अदेश कालचर्याका त्याग -

अदेश याने आर्यताके संस्कारों रहित देश, जिस क्षेत्रमें हिंसा असत्य, चोरी, लूट, दुराचार आदि दुर्गुणोंका ही वर्चस्व हो । धर्म, दया, अहिंसा आदि गुणोंकी किंमत ही न हो । ये सब अदेश कहलाते हैं ।

अकाल याने अयोग्य काल, जो कार्य जिस काल में करनेसे लाभ के बजाय नुकसान हो तो वह अयोग्य काल अकाल कहलाता है ।

महापुरुषोंने हमारे आत्माकी, हमारे आलोक-परलोक को सुख शांतिमय बनाने के लिये कितनी सब चिंता की है ।

हिंसा .... दुराचार का वातावरण हमें हिंसक - दुराचारी धर्म विरोधी न बनाये... हमारे आत्माको पाप के भार से बोझील न बनाये... दुःख और दुर्गतिमें न सडाये इसी लिये उन्होंने अदेश का त्याग करनेको कहा है ।

अयोग्य काल में घूमने की आदत हमारे जीवनमें दारु, जुगार, चोरी, परस्त्रीगमन जैसे व्यसन और पाप ला सकता है । हमारे शील-सदाचार को लूट सकता है । हमारे मालमिलकत और शरीरादि को नुकसान पहुँचा सकता है । इसीलिये सावधान बनकर अकाल चर्या का त्याग जरुरी है ।

२०. पाप भीरुता :-

पाप के ढेर के बीच में बैठा हुआ मानवी पापसे कब बच सके ? सहज जवाब है... जब उसके पास पापभीरुता हो । पापभीरुता याने पाप का भय । जिसे पाप का भयहि न हो वह मजेसे पापों के बीच बैठ सकता है और मजेसे पाप कर सकता है । परंतु जिसके जीवनमें पाप का डर बैठ गया है वह सदा खुद को पापोंसे दूर ही रखने की कोशीश करेगा ।

कालसौरिक कसाई के जीवन को पुत्र सुलस ने देखा था । पिता ने कैसे पाप किये थे और उसका क्या फल प्राप्त हुआ यह जानकर पुत्र पाप से भयभीत हो उठा था ।

नहीं अब मुझे ऐसे पाप करना नहीं है.... उसके कटु परिणाम भोगने नहीं है, ऐसा कहकर उसने बापदादासे चलता आया कसाई का धंधा छोड दिया ।

मिले हुए मूल्यवान मानव भवको सफल बनाने का श्रेष्ठ उपया है जीवन में ''पापभीरुता'' के गुण को मजबूत बनानेका । जब जब पाप सेवन की संभावना हो तब तब खुद को सवाल करें 'मैं प्रभु महावीर का वारसदार हूँ, मुझसे ऐसा पाप होगा ?'' यदि ऐसा पाप करुंगा तो भवांतर में मेरा क्या होगा, ऐसी सोच से सब पापों से बच जायेंगे, जीवन निर्मल बन जायेगा ।

२१. लज्जा :-

लज्जा याने लाज, शरम, मर्यादा, दाक्षिण्यता । सज्जन को दुर्जन बनने से रोकने की और उसकी सज्जनता को टिकाये रखनेकी जबर्दस्त ताकत इस लज्जाके गुण में है । आज दुनिया पर समाजपर दृष्टिक्षेप डालनेसे खयाल आता है कि हमारी दुर्दशा का मूल-हमने गुमायी हुई लज्जा की ओर अंगुलीनिर्देश करता है ।

आज हम जहाँ तहाँ और जब तब घूमने में... सिनेमा , नाटक देखने में, बिभत्स साहित्य पढने में... अयोग्य वस्त्र धारण करने में... दुर्जनों के साथ संबंध बांधने में हलकी भाषा बोलने में, लज्जा को ताकपर रख दिया है । निर्लज्ज बन गये हैं ।

भगवान की पूजा करनेमें, गुरुओंको वंदन करने में, उपकारी माता पिता को नमस्कार करने में, साधर्मिकोंकी भक्ति करनेमें हमें लज्जा महसूस होती है ।

सत्कार्य तो उल्लसित भावसे करना है । अयोग्य कार्य करते हुअे लज्जित होना है । चलें, आजसे हमारी भूल को सुधारकर सुयोग्य लज्जा धारण करें, अयोग्य कार्योंका त्याग कर सुकृतों के उपासक बनें ।

२२. सौम्यता :-

गुलाब को सब चाहते है जबकि कांटोसे सब दूर भागते हैं । कारण क्या होगा ? गुलाब के पास कोमलता है । कांटोंके पास कठोरता है । गुलाब की कोमलता उसकी सुंदरतामें वृद्धि कर सब को आकर्षित करती है । बस ऐसा ही है मानवी के बारे में ।

जिसके हृदय में कोमलता है उसके मुखपर सौम्यता के दर्शन हुए बिना नहीं रहते । जिसके मुख पर सौम्यता है उसके पास सब आनेको और बैठने को, दो बातें करने में आनंद मानते हैं । उन्हें आनंद मिलता है । परंतु जिसके हृदय में कठोरता है उसके चेहरेपर असौम्यता कब्जा जमा लेती है । ऐसी व्यक्ति की बाजूमें जाने को कोई तैयार नहीं होता तो बैठना, बोलना संभव ही कहाँ ?

आपके स्वभावमें से अहंकार निकाल नम्रता धारण करो । वचनमेंसे कटुता, निकालकर मधुरता धारण करो, क्रोध,इर्ष्या और स्वार्थ को दूर कर क्षमा, मैत्री, निस्वार्थताको स्थिर करो । आपको आपके जीवन में आये हुए परिवर्तन का ख्याल आये बिना नहीं रहेगा ।

२३. लोकप्रियता :-

मानव समाजप्रिय प्राणी है । मनुष्य समाज के बीच रहना पसंद करता है । हम जिस समाज के सदस्यों के बीच रहते है, उनमें प्रिय है या अप्रिय यह बात बहुत महत्व की है । लोकप्रियता-समाजप्रियता या परिवार प्रियता प्राप्त करने के लिये निश्चितही कई गुणोंको विकसित करना पडता है । लोकविरुद्ध के

त्याग के साथ दान-विनय-शील जैसे सद्गुणोंकी प्राप्ति मनुष्य को लोकप्रियता के शिखर पर पहुँचाने में सहायक बनती है ।

मांस,मदिरा, जुगार, शिकार, चोरी, परस्त्रीगमन और वेश्यागमन जैसे सात महाव्यसन व्यक्तिको कभी भी प्रशंसनीय स्थान पर नहीं पहुँचा सकते । सब सदगुण होने के बाद भी उपरोक्त व्यसनोंमेंसे अेकाद भी व्यसन जीवन में हो तो व्यक्ति लोकप्रियता प्राप्त नहीं कर सकता हैं । व्यसनों के साथ निंदा विकथा की प्रवृत्ति भी सब के हृदय में स्थान नहीं दे पाती । ऐसी सब प्रवृत्तीयों का त्याग जीवनमें होनाही चाहिये ।

इस त्याग के साथ जब मनुष्य उदारदिल हो... सब को संभाल लेने की, समालेने की भावना हो, सब के दुःख में सहभागी बन साथ देने की प्रवृत्ति हो, विनय,नम्रता भरपूर व्यवहार हो और शील-सदाचार मय जीवन हो तो लोकप्रियता स्वयमेव प्राप्त हो जाती है । उसे मिलाने कहीं जाना नहीं पडता । कोईभी प्रयास नहीं करना पडता ।

गुण २४. दीर्घदृष्टि :-

किसी भी कार्य को प्रारंभ करने के पहले लाभालाभ का विचार करना चाहिये । कार्य के अंतिम परिणाम का विचार करना चाहिये । लंबे समय में होनेवाले लाभ-हानि की विचारणा करनी चाहिये । यदि लाभ से हानि ज्यादा दिखाई दे तो ऐसे कार्य का सत्वर त्याग करना चाहिये । इसे दीर्घदृष्टि कहते हैं ।

जिस के पास दीर्घदृष्टि है उसकी नजर सिर्फ लाभपर स्थिर न रहकर उसे गैरलाभ भी समझना चाहिये । उसकी गिनतीमें केवल वर्तमान नहीं भविष्य भी विचारणीय होता है ।

धंधे मे ं अनीति करने से तात्कालिक लाभ होगा पर अंततः परिणाम हानिकारक होगा । मित्र के साथ विश्वासघात करनेसे वर्तमान में फायदा होगा पर अंततोगत्वा हानि ही है ।

विषयसुखों के भोग में सामने सुख दिखता है पर अंत में दुःख ही है ।

ये सब बातें दीर्घदृष्टि बिना ख्याल में नहीं आती । दीर्घदृष्टिवाला कभी भी पापकारी कार्यों में प्रवृत्ति करता नहीं है । पापोंसे खुद को बचाने की क्षमता दीर्घदृष्टि के गुण में समाहित है ।

गुण २५. बलाबल की विचारणा :-

सत्ता हो या संपत्ति... बल हो या बुद्धि... तप हो या त्याग.... व्रत हो या पचख्खाण... अपने शक्ति का माप निकालकर.... ताकत का विचार कर फिर जो कार्य किया जाता है वह कार्य आधे बीच अटकता नहीं है । बीच में छोडना नहीं पडता, और कभी भी पस्ताना नहीं पडता ।

डॉक्टर बनने की शक्ति न हो और आधे तक जाकर पढ़ना छोड़ना पडे तो साल बिगड़ता है । संपत्ति न हो तब भी उधार लेकर सिक्का जमाने जाये तो बाद में पस्ताना पडता है । तप करने के लिये शरीर की क्षमता-शक्ति का विचार किये बिना झुकायें तो असमाधि ही प्राप्त होगी । हरेक क्षेत्र में बढ़ने से पहले बलाबल की विचारणा करना आवश्यक है ।

आज समाज में जो अशांति और असमाधि दिखती है उसके पीछे स्पर्धा में खिंचे जाना और ताकत से ज्यादा कर दिखाने की प्रवृत्ति ही है ।

गुण २६. विशेषज्ञता :-

विशेषरुपसे जानना और विवेकपूर्ण बर्ताव करना उसे विशेषज्ञता कहते है ।

क्या खाना ? क्या नहीं खाना ? क्या करना क्या नहीं करना ? कहाँ जाना ? कहाँ नही ं जाना ? क्या सार है ? क्या असार है ? इन सब बातों का जो योग्य निर्णय ले सकता है, वही विवेकपूर्ण बर्ताव कर सकता

है । जिसके पास ऐसा विवेक नहीं है उसका जीवन कभी भी सुधर नहीं सकता । उंचा नहीं उठ सकता ।

विशेषज्ञता का स्वामी कभी भी गलत रास्ते पर नहीं जा सकता । दुर्जनों के साथ दोस्ती नहीं रखता । असद् वाचन या बर्ताव का भोग नहीं बनता । वह तो निर्मल और पवित्र जीवन बितानेवाला होता है । विवेक बिना के सब गुण अंक बिना के शून्य जैसे होते है । विवेकहीन जीवन पशु समान बन जाता है । ऐसे मानव जीवन की कोई किंमत नहीं है । पशु की परीक्षा देह से होती है, मानव की परीक्षा गुणों से होती है । मनुष्य जीवन कें सच्चे विकास के लिये मानव जीवन को धन्य और सफल बनाने के लिये विवेक एवं विशेषज्ञानको प्राप्त करने के लिये अप्रमत्त बन पुरुषार्थ करना चाहिये ।

गुण २७. गुणपक्षपात :-

धनवान बनने की जिसे महेच्छा होती है वह धन जोडने में रस लेता है । अपनी संपत्ति के रक्षण के साथ साथ और संपत्ति प्राप्त करने की ओर उसका लक्ष्य रहता है । उसी तरह गुणवान बनने की जिसे महेच्छा होती है वह गुणों को जोडने में रस लेता है । अपने गुणोंकी रक्षा करने के साथ विश्वमें कहाँ भी गुण दिखे तो तुरंत उसे मिलाने का पुरुषार्थ प्रारंभ कर देता है । गुणों के लिये उसे राग और पक्षपात रहता है । गुणों के प्रति राग.... गुणवानों के प्रति राग प्रकटाये बिना रहता नहीं है । गुण एवं गुणवानों के प्रति राग हमें गुणवान बनाकर ही रहता है ।

लंबे समय से हमने दोषों के समूह को संग्रहित किया है इन दोषोंके फलस्वरुप अनेक पाप कर भयंकर दुःख भोगें है । इन सब दुःखोंका अंत करना हो तो सर्वप्रथम दोषोंका त्याग करना पडेगा, जिसे दोषोंका त्याग करना है उसे दोषोंके भयानकता का परिचय करना पडेगा । दोषों के लिये धिक्कार एवं गुणों के प्रति पक्षपात विकसाना पडेगा ।

गुण २८. कृतज्ञता :-

आज हम जिस शांति एवं सरलता से जीवन यापन कर रहे है इसके पीछे अनेकानेक आत्मा ओंके हमारे पर किये हुए उपकार है । उपकारीयों के उपकार की स्मृति एवं प्रति उपकार करनेकी सदा तैयारी यह कृतज्ञता का लक्षण है ।

आज हमें विश्वमें जो स्थान मिला है उसके पीछे मातापिताका... स्वामी का एवं गुरुजनोकां बडा उपकार है । जन्मसे पहले और फिर माता-पिताने जो लालन पालन किया, संस्कार दिये, अनेक कष्ट उठाकर हमें पढाया-लिखाया वे सब उपकार याद है ना ?

जिस स्वामीने आजीविकार्थ नोकरी या धंधेपर चढाया, उसमें कुशलता दिलवाई, योग्य मार्ग-दर्शन देकर रहस्य समझाया उस स्वामी या मालिक के उपकार का बदला देने का मौका मिले तो मौका साधने की तैयारी है न ?

धर्म का मर्म समझाकर पाप से दूर हटाया पुण्यकार्य के लिए प्रेरणा दी, संसार के स्वरुप की पहचान कराई और समाधि को टिकाने की जडीबुट्टी दी... दुर्गति के दरवाजे बंद कराकर सद्गति के द्वार खोल दिये ऐसे गुरुभगवंतों के लिये पूज्यभाव तो है ना ?

इन सब उपकारीयोंके उपकार सतत नजर समक्ष रखकर उनके प्रति पूज्यभाव विकसित कर उन्हें सुख-शांति पहुँचाने के लिये जो करना पडे वह करने की तैयारी होगी तो ही हम कृतज्ञता के गुण को पाये है ऐसा कहा जायेगा ।

पर ऐसा न हुआ, उपकारीओंके उपकार भूलकर हमने उन्हें हेरान-परेशान किया होगा... उनका अपमान कर अपना खुदका स्वार्थ साधने का ही प्रयत्न किया होगा तो हम कृतघ्न बन जायेंगे । हमारे प्रगति के द्वार बंध हो जायेगे, अधोगति के द्वार स्वयमेव खुल जायेंगे ।

गुण २९. परोपकार :-

नदी खुद अपना पानी नहीं पी जाती, सब को देती है । वृक्ष अपने फल औरोंको देते ही हैं, साथ में शीतल छांव भी देते है ।

गाय घास खाकर भी मधुर दुध देती है । बादल खारा पानी पीकर मीठा जल बरसाते है ।

हम दुनिया के जीवों को क्या देते है ? खुद के लिये तो पशु भी जीते है । पशुपंखीभी अपने लिये घोंसला...दर...गुफादि (घर) बनाते है । अपना और अपने परिवार का पेट भरते है, रक्षण करते है । मानव बनकर हम भी उतना ही करें तो मानव जीवन की महानता क्या ? यह जीवन परोपकार के लिये मिला है । इस बात को ध्यान में रखकर परोपकार के हर मौकेका लाभ ले लेना चाहिये ।

शरीर को घिसाकर परोपकार हो सकता है... प्रेम के... आश्वासन के.... शांति के दो शब्द बोलकर भी वचन से परोपकार हो सकता है । सब जीवों के शुभ-मंगल की कामना कर शुभ भावना द्वारा भी मन से परोपकार हो सकता है ।

पुण्य के भंडार को भरनेवाले परोपकार को जीवन में गूंथ लेना चाहिये ।

गुण ३०. दया :-

भगवान महावीर का संदेश है -''जियो और जीने दो ''

अनमोल मानव जीवन सिर्फ जीने के लिये नहीं मिला अपितु औरोंको भी जीवन देने के लिये मिला है । हमारी सावधानी अनेकों को अभयदान दे सकती है । हमारी बेदरकारी अनेकोंके प्राण ले सकती है । जब तक हृदय में कोमलता नहीं है, तब तक दया के गुण की संभावना दिखाई नहीं देती । दया गुण को विकसित करना है तो अन्य जीवोंके दुःख देखकर दुःख दूर करनेके प्रयास भी करने पडेंगे । सद्भावना का चिंतन करना पडेगा । हम आज तक स्वार्थ में पागल बनकर रहे हैं । हम ने अपना खुद का ही विचार किया है, दूसरे का कभी भी विचार न किया है न सोचा है ।

दया धर्म का मूल है । जहाँ बीज ही न हो वहाँ अंकुर कहाँ से ? दया नहीं वहाँ धर्म कहाँ ? धर्म जीवको स्वार्थसे परमार्थ की ओर ले जाता है । दयालू आत्माऐं खुद दुःख सहन करके भी औरोंको सुखी करते हैं । भूख-प्यास और दुःखों से त्रस्त जीवों की योग्य सहायता कर उनके दुःखों का हरण कर सुखी बनाने के प्रयत्नोंमे रत रहकर, चलो आत्मकल्याण की साधना करें ।

गुण ३१. सत्संग :-

''जैसा संग वैसा रंग'' यह कहावत हमें सावधान करती है । लहसून के साथ कोई वस्तू रखी हुई हो तो उसेमें लहसून की गंध आ ही जाती है । जबकि अत्तर के साथ रखी हुयी वस्तु सुवासित बनकर ही रहती है । ऐसाही है हमारा जीवन, सत् का संग हमें सज्जन एवं संत बनाता है, जबकि असत् का संग हमें दुर्जन या शैतान बनाता है ।

अनादिकालसे हमारी आत्मा के साथ अनेक दोष जुडे है । उन्हे जो कुसंग मिल जाय तो वे दोष हमारे वर्तमान जीवन को दुर्जन और शैतान बनाकर हमारे हाथोंसे पापी और नीच कार्य कराता है । अनादि के दोषोंको यदि दबाना हो तो उन्हें कभीभी कुसंग का निमित्त न देते हुए सतत सत्संग में रखने की आवश्यकता है । सत्संग के प्रभावसे जीवन के दोष दूर होते है, सद्गुण एवं सात्विकता का जीवन में प्रवेश होता है । वालिया डाकू को वाल्मिकी ऋषी बनाने वाला... आद्रकुमार को प्रभु महावीर का शिष्य बनानेवाला... रोहिणी चोर को साधु बनानेवाला.... सत्संग ही है ।

सत् का संग कर उसके रंग में रंगकर सज्जन बनने में उद्यमवंत बनें ।

गुण ३२. धर्मश्रवण :-

कान मिले याने हमें पंचेन्द्रियत्व मिला । पर इन कानों का उपयोग आज दिन तक क्या सुनने में किया ? किसीकी निंदा... किसीकी विकथा... सिनेमा संगीत... विषय और वासना की वृद्धि करनेवाले शब्द... मोहको बढानेवाली बातें... ये सब सुननेसे मोह बढा... संसार बढा.... कर्मोंके बंध मजबूत बने, और उससे हमारी आत्मा दुःख-दुर्गति का शिकार बनी । परंतु यदि इस कर्णेन्द्रिय का उपयोग धर्मश्रवण के लिये करने में आये तो आत्मा-परमात्मा का परिचय होता.... पाप पुण्यकी समज आती.... कर्म और धर्म का मर्म समझता... जड चेतन के भेद को परख सकते.... समता, संतोष, सत्संग, सदाचारादि गुण जीवनमें प्रगटते... आलोक परलोक ख्याल आता, अनादि के आत्मा के परिभ्रमण का और चार गतिमय संसार से छूटनेका भाव जागे, त्याग वैराग्य के मार्ग पर आगे बढनेकी प्रेरणा मिले, दान-शील-तप-भाव में प्रवृत्ति हो और देशविरति या सर्वविरति तरफ प्रेम जागे, धर्मश्रवण के द्वारा ही जंबूस्वामी की आत्मा जागी, धर्मश्रवणसे ही चंडकौशिक आठवें देवलोकमें पहुँचे.... देशविरति, सर्वविरति यावत् केवलज्ञान और मोक्ष तक के आत्मविकास के नींव में धर्मश्रवण का महान गुण है । आत्मकल्याण के इच्छुक सब के जिवन में 'धर्मश्रवण' नियमित होना ही चाहिये ।

गुण ३३. बुद्धिके आठ गुण :-

'धर्मश्रवण' जीवन में सफल कब होगा जब सुयोग्य बुद्धि का उपयोग किया जाय । इसीलिये यहाँ 'धर्मश्रवण' के बाद बुद्धि के आठ गुणों की बात बताई है । बुद्धि के आठ गुण ये है -

१) शुश्रूषा - शुश्रूषा याने तत्व सुननेकी इच्छा या जिज्ञासा.

२) श्रवण - मन से परमात्मा की बात सुनना ।

३) ग्रहण - परमात्मा की वाणी सुनने के बाद उसमेंसे थोडा भी स्वीकार कर जीवन में आचरण में लाना ।

४) धारणा - सुनी हुई वाणी भूले बिना स्मृति में रखना ।

५) ऊहा और (६) अपोह - सुनी हुई वाणीको चिंतन-मनन पूर्वक अनुकूल और प्रतिकूल तर्क पूर्वक स्वीकारना ।

७) अर्थ-विज्ञान - सुने हुए वाणीद्वारा विशिष्ट अर्थ विज्ञान पाकर निर्णयात्मक बोध लेना ।

८) तत्वज्ञान - तत्वज्ञान से हेय-ज्ञेय और उपादेय का बोध होता है । हेय याने त्याग करने योग्य, ज्ञेय याने जानने योग्य उपादेय याने आचरण में लाने योग्य, यह बोध होने से 'धर्मश्रवण' द्वारा तत्वज्ञानरुपी अर्क प्राप्त होनेसे दोषों से मुक्ती और गुणोंसे जीवन बनकर ही रहता है ।

गुण ३४. प्रसिध्द देशाचार का पालन :-

आप जिस देश में रहते है उस देशमें जो सुंदर, सात्विक आचार, लोकव्यवहार या रीतिरिवाज चलते हो उनका जीवन में पालन करना ही चाहिये । ऐसा न करने से इस लोकमें निंदा, अपमान और तिरस्कार होता है । जबकि, परलोकमें कटु फल भोगने पडते हैं । आज हम अनार्य देशकी रहनी-करनी को अपना रहे है, और अपने तौर-तरिके की निंदा और तिरस्कार कर रहे हैं ।

सुसंस्कारयुक्त अपनी संस्कृति का मजाक उडा रहे हैं । अब तो उसके कटु फल भी हमें देखने मिल रहे हैं । खाने-पीने में, घूमने फिरने में, मोज-शोखमें हम पागल बने है । न है समय का भान, न है पहनावे का

भान फलस्वरुप अपहरण, बलात्कार के बनाव सामान्य बन गये हैं । पैसों का महत्व बढा, संस्कारोकी महेक घटी, जीवन पापमय और हिंसामय बनाकर हमने अपने ही हाथोंसे अपनी बरबादी निमंत्रित कर ली है । अब जागृत होकर आर्यधरती के उत्तम सात्विक संस्कारमय एवं मर्यादा भरपूर जीवन के स्वामी बनने के लिये सफल पुरुषार्थ प्रारंभ कर उसके मधुर फलोंका आस्वाद लें ।

गुण ३५. शिष्टाचार प्रशंसा :-

उदारता..गंभीरता...धीरता...वीरता... परोपकारिता....नम्रता....कृतज्ञता आदि अनेक गुणोंके स्वामी शिष्ट पुरुष कहलाते है । उनके जीवन में व्यसन-विकथा और विकृति का नाम निशान नहीं होता । अनेक गुणोंसे युक्त महापुरुषों के आचार की प्रशंसा तो नहीं कर सकते परंतु उनके जीवनमें नहीं है ऐसे दुर्गुणों को खोजने का और निंदा करने का ही प्रयास करते हैं । ऐसे वर्तन से हम कभी भी गुणों को प्राप्त नहीं कर सकते ।

''उत्तम ना गुण गावतां गुण आवे निज अंग '' गुणीजनों के गुणों की प्रशंसा करने से ही अपने जीवन में गुण प्रकट होते है । जिसे अपना जीवन उत्तम गुणों से महकाना है, उन्हें 'शिष्टाचार प्रशंसा'' का गुण अपनाना ही पडेगा । इस काल में जब सदाचार का दुष्काल है तब जहाँ कहीं भी छोटा सा शिष्टाचार या छोटा सा सुकृत नजर में आये तो पेटभर कर भूरी भूरी प्रशंसा एवं अनुमोदना करने जैसी है । ऐसा करने से ही हममें शिष्टाचार पालन एवं सुकृत की परंपरा खडी करने का अद्‌भूत बल प्रकट होगा ।

जीव-विचार

वनस्पतिकाय के मुख्य साधारण और प्रत्येक ऐसे दो भेद बताकर पू. शांतिसूरिजी महाराजा ने साधारण वनस्पतिकाय में आने वाले विविध अनंतकाय के नाम बताकर बत्तीस अनंतकाय का परिचय कराया। अब हमारी जानकारी के लिये हमारे समक्ष साधारण वनस्पतिकाय तथा प्रत्येक वनस्पतिकाय के लक्षण बताते हैं।

''गुढ सिर संधिपव्वं,
समबंग महिरुगं च छिन्नरुहं
साधारण शरीरं, तव्विवरीयं च पत्तेयं ।। १२।।

गाधार्थ - जिनकी नसें, संधिया, गांठे वगैरह गुप्त हो, तोडने से जिनके दो समान भाग हो तथा जिनमें रेशे न हो, तथा छेदन करके बोने पर फिर से उगे वे साधारण वनस्पतिकाय कहे जाते हैं। इनसे विपरीत लक्षणवाले प्रत्येक वनस्पतिकाय कहे जाते हैं।

सामान्य विश्व में जो वृक्ष हमारी नजर समक्ष आते हैं, उन वृक्षों के पत्तों वगैरह मे स्पष्ट नसें दिखती है, जबकि साधारण वनस्पतिकाय में वो देखने में नही आती। बाँस गन्ना वगैरह में स्पष्ट गांठे दिखती है, परंतु साधारण वनस्पतिकाय में गुप्त होती है।

सामान्य वृक्ष के फल और मूल आदि में रेशे (तंतु) होते हैं, परंतु आलू, कांदा, बीट वगैरह साधारण वनस्पतिकाय में रेशे नहीं होते।

साधारण वनस्पतिकाय का छोटा टुकडा भी बोने पर पुनः उगता है जबकि प्रत्येक वनस्पतिकाय में ऐसा नहीं होता। उदा. के तौरपर - पानकुटी के पत्ते, आलू की आँख का भाग वगैरह बोने से उग जाते हैं। इस तरह साधारण वनस्पतिकाय के लक्षणों से तपास कर हम उन्हें अलग कर सकते हैं।

साधारण वनस्पतिकाय के लक्षण बताकर प्रत्येक वनस्पतिकाय के लक्षण उससे विपरीत है यह बताया। इससे प्रत्येक वनस्पतिकाय के लक्षण नीचे मुजब कह सकते हैं -

ल जिनकी नसें, संधिया, गांठे वगैरह गुप्त न हो किन्तु दिखाई देती हों।

- तोडने पर जिनके दो समान भाग न होते हों।
- जिनमें रेशे (तंतु) हो तथा
- छेदन करके बोने पर पुनः न उगे।

ये प्रत्येक वनस्पतिकाय की विशेषतायें बताते हुये कहते हैं -

''एग सरीरे एगो जीवो जेसिं गु तेय पत्तेया।
फल फूल छल्लि कट्ठा,
मूलग पत्ताणि बीयाणि ।। १३।।

गाथार्थ - अेक शरीर में अेक जीव (वृक्ष आदि) जिसे भी हो वह प्रत्येक वनस्पतिकाय कहलाते हैं। फल,फूल, छिलका, तना, जड, पत्ते और बीज प्रत्येक वनस्पतिकाय हैं।

यहाँ प्रत्येक वनस्पतिकाय की समझ देते हुये कहते हैं, एक वृक्ष में सात स्थान में अलग अलग जीव होतें है, यह बात स्पष्ट करते हैं।

एक वृक्ष को लें तो उसके फल में अलग जीव है... फूल में अलग जीव हैं... तने में... जड में... पत्ते में... छाल (स्कीन) में तथा बीज में अलग अलग जीव है।

वृक्ष पर जितने पत्ते उतने प्रत्येक पत्ते में जीव अलग है... जितने फल उतने जीव अलग हैं.... एक फल का जीव तथा उस फल में जितने बीज हैं उतने अलग जीव होते हैं। इस तरह विचार करते हुए एक

वृक्ष के विविध स्थान में विविध जीव है, परंतु प्रत्येक जीव का स्वयं का शरीर अलग है इससे वो प्रत्येक वनस्पतीकाय कहलाता हैं ।

सूक्ष्म जीव चौदह राजलोक में भरे हुए हैं -

हमे अपने आजुबाजु में कुछ भी दिखाई नहीं देता अवकाश खाली जगह ही दिखाई देती है । जबकि ज्ञानी भगवंत हमारी इस भ्रमणा को दूर करते हुए हमारे चारों तरफ सूक्ष्म जीवों की हाजरी बताते हैं । इस बात को आज विज्ञान भी स्वीकार करता हैं । पू. शांतिसूरिजी म. क्या कहतें हैं ? समझने का प्रयत्न करें -

''पत्तेय तरूमुतं, पंचवि पुढवाईणो सयललोए ।
सुहुमा हवंति नियमा,
अंतमुहुत्ताउ अदिस्सा ।।१४।।

गाथार्थ - प्रत्येक वनस्पतिकाय को छोडकर पाँचो पृथ्वीकायादि समग्र लोक में निश्चय से सूक्ष्म होते हैं... अंतुर्मुहुर्त के आयुष्यवाले और अदृश्य होते हैं ।

प्रत्येक वनस्पतिकाय बादर ही हैं, देख सकें ऐसे ही हैं । इस प्रत्येक वनस्पतिकाय को छोड कर बाकी रहे अेकेन्द्रिय जीवों की बात बताते हुए कहते हैं कि, पृथ्विकाय, अपकाय,तेउकाय, वायुकाय तथा साधारण वनस्पतिकाय के सूक्ष्म जीव चौदह राजलोक में भरे हुए हैं और अदृश्य होने से हम अपने चर्म चक्षु से उन्हें नहीं देख सकते । हमारे आसपास की सभी जगह इन सूक्ष्म अेकेन्द्रिय जीवों से भरी हुई है और उनका आयुष्य ज्यादा से ज्यादा एक अन्तर्मुहुर्त ही है ।

जीव विचार की चौदह गाथा के द्वारा हमने जीव के स्थावर और त्रस इन भेद को जानने के पश्चात स्थावर जीवों के विविध ६ भेद जाने । ये छः भेद नीचे मुताबीक हैं -

१) पृथ्विकाय २) अपकाय ३) तेउकाय ४) वायुकाय ५) साधारण वनस्पतिकाय और ६) प्रत्येक वनस्पतिकाय ।

इन छः भेद में से प्रत्येक वनस्पतिकाय बादर ही है । जबकि प्रथम पाँच भेद बादर और सूक्ष्म इस तरह दो प्रकार के हैं । इससे स्थावर के सूक्ष्म और बादर मिलाकर ११ (ग्यारह) भेद होते हैं । इन ग्यारह के आगे चलकर पर्याप्त और अपर्याप्त इस तरह दो-दो भेद होने से कुल मिलकर स्थावर जीवोंके भेद २२ (बाईस) होते हैं ।

''कोई तुम्हें पूछे तुम्हारी मुठ्ठी में या हाथ की खाली अंजली में कितने जीवभेद संभावित है ?

आपका जवाब क्या होगा ?

जीवविचार के इतने अभ्यास के पश्चात हमें खयाल आना चाहिये की १० सूक्ष्म जीव और २ बादर वायुकाय के यानि (१२) भेद सदा सर्वदा ही संभवित हैं ।

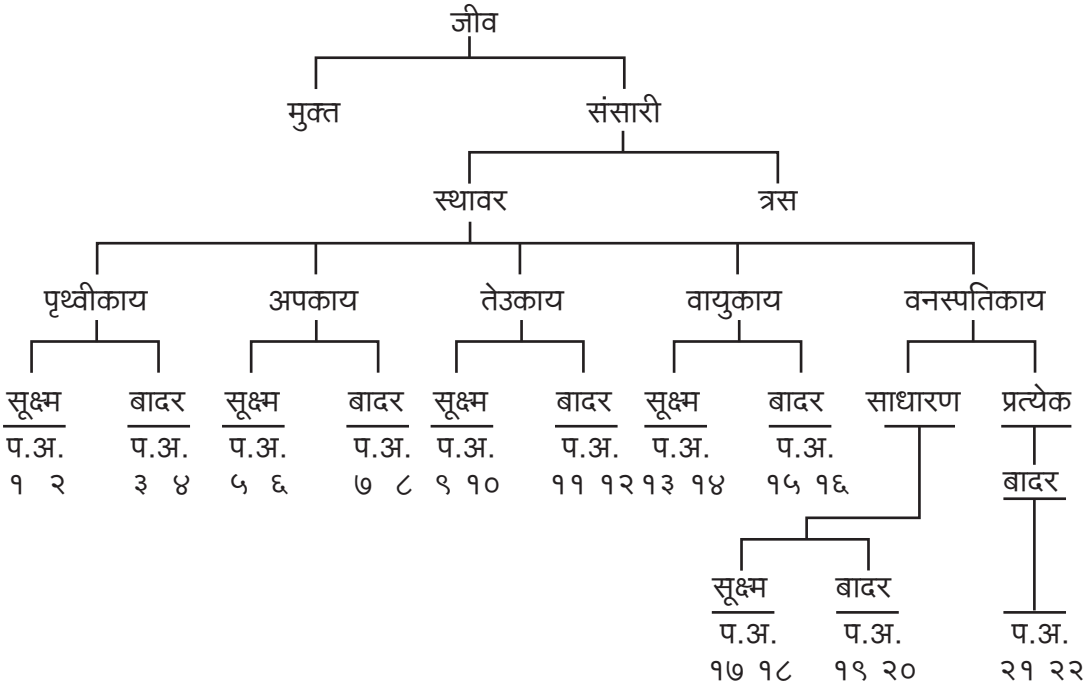

अब हम पर्याप्त और अपर्याप्त याने क्या वो जाने ।

स्वयं के योग्य पर्याप्ति पूर्ण करे वह जीव पर्याप्त कहलाता है और स्वयं के योग्य पर्याप्ति पूर्ण न करे वह जीव अपर्याप्त कहलाता है ।

''आहार शरीर इंद्रिय, पज्जत्ती, आणपाण भास मणे ।
चउ पंच पंच छप्पिय, इग विगला सन्निसन्नीण ।। (नवतत्व - ६)

पर्याप्ति याने शक्ति ये पर्याप्ति छः हैं ... जो नीचे मुताबिक जानना -

१) आहार पर्याप्ति २) शरीर पर्याप्ति ३) इन्द्रिय पर्याप्ति ४) श्वासोश्वास पर्याप्ति ५) भाषा पर्याप्ति ६) मन पर्याप्ति... इनमें से एकेन्द्रिय को प्रथम चार पर्याप्ति होती है ।

जीव जहाँ जाता है वहाँ प्रथम आहार ग्रहण करता है । आहार योग्य पुदगलों को ग्रहण करके उन्हें खल-रस आदि में परिणमित करने की शक्ति वो आहार पर्याप्ति है.... आहार लेने के पश्चात उसके द्वारा जीव शरीर बनाता है । शरीर योग्य पुदगलों को ग्रहण करके उसे रक्त आदि परिणमित करने की शक्ति वो शरीर पर्याप्ति है । शरीर बनने के पश्चात जीव धीमे धीमे इन्द्रिय बनाता है । इन्द्रिय योग्य पुदगलों को ग्रहण करके इन्द्रिय में परिणमित करने की शक्ति वो इन्द्रिय पर्याप्ति इन्द्रियो आदि बनाने के पश्चात जीव श्वासोश्वास की प्रक्रिया शुरु करता है । श्वासोश्वास योग्य पुद्गलों को ग्रहण कर श्वासोश्वास रुप परिणमित करने की शक्ति वो श्वासोश्वास पर्याप्ति है । एकेन्द्रिय जीवों को चार पर्याप्ति होती है । विकलेन्द्रिय (द्विइन्द्रिय से चउरेन्द्रिय) को पाँच असंज्ञी पंचेन्द्रिय को पाँच और संज्ञी पंचेन्द्रिय को छः पर्याप्ति होती है । इस प्रकार स्थावर जीवों के बावीस भेदों का विस्तार से विचार करने के पश्चात अब हम त्रस जीवों का विचार करेंगे ।

नव - तत्व.... (अजीव - तत्व)

जीवतत्व के जीवन का आधार अजीव तत्व है । संसारी जीवो का जीवन अजीव तत्व की सहायता के बिना अधुरा है । चलना हो.... या दौडना हो.... खडा रहान हो या बैठना हो... बोलना हो या सुनना हो.... खाना हो पीना हो.... अजीव तत्व की सहायता अनिवार्य है । हम अजीव तत्व के आधार से ही एक एक क्रिया कर सकते हैं । क्या हमें उसकी समझ है, हमारे पास इसका ज्ञान है ?

अजीव तत्व के भेद.... अजीव तत्व के लक्षण ज्ञानी भगवंत हमें बताते हैं । इसका चिन्तन-मनन करने से विश्व में चलने वाली अनेकानेक चित्र-विचित्र क्रियाओं का रहस्य खुला होता है । अणु-परमाणु का भेद समझ आता है ।

जीव जिस तरह शक्ति का भंडार है, उसी तरह अजीव में भी महा शक्ति भरी हुई है । आईये हम इस शक्ति को समझ कर जानकर इसकी आसक्ति में से मुक्त बनने का पुरुषार्थ करें ।

जीव-जीवस्वरुप ही है,

अजीव - अजीवस्वरुप ही है ।

जीव-अजीव बनता नहीं.....अजीव जीव बनता नहीं ।

तत्व को तत्वरुप जानकर संसार सागर तैर जायें...

''धम्मा s - धम्मागासा,

तिय तिय भेया तहेव अद्धाय ।

खंधा देस पअेसा,

परमाणु अजीव चउ दसहा ।।८।।

धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय और आकाशास्तिकाय इन प्रत्येक के तीन तीन भेद मिलकर नव होते हैं । उसी प्रकार काल का एक इस तरह दस, स्कंध, देश, प्रदेश तथा परमाणु इन चार को दस में मिलाने पर अजीव के कुल चौदह (१४) भेद होते हैं ।

आस्ति यानि प्रदेश और काय यानि समुह । अजीव याने जीव रहित - अजीव के मुख्य पाँच भेद हैं -

१) धर्मास्तिकाय २) अधर्मास्तिकाय ३) आकाशास्तिकाय ४) काल और ५) पुद्गलास्तिकाय

इनमें धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय तथा आकाशास्तिकाय के तीन तीन भेद हैं । ये तीन भेद निम्न प्रकार से हैं -

१) स्कंध २) देश और ३) प्रदेश

वस्तु का संपूर्ण भाग वो स्कंध कहलाता है । स्कंध से छोटा परंतु पुनः जिसका विभाजन हो सके ऐसा स्कंध के साथ ही जुडा हुआ भाग वह देश कहलाता है ।

स्कंध के साथ जुडा हुआ स्कंध का छोटे से छोटा अविभाज्य सूक्ष्म अणु वह प्रदेश कहलाता है ।

इससे धर्मास्तिकाय - अधर्मास्तिकाय और आकाशास्तिकाय के कुल १ भेद हुआ ।

१) धर्मास्तिकाय स्कंध २) धर्मास्तिकाय देश ३) धर्मास्तिकाय प्रदेश ४) अधर्मास्तिकाय स्कंध ५) अधर्मास्तिकाय देश ६) अधर्मास्तिकाय प्रदेश ७) आकाशास्तिकाय स्कंध ८) आकाशास्तिकाय देश ९) आकाशास्तिकाय प्रदेश ।

काल का एक ही भेद होने से १ भेद हुआ ।

स्कंध से अलग हुआ स्कंध का छोटे से छोटा अविभाज्य सूक्ष्म अणु वह परमाणु कहलाता है ।

स्कंध से अलग हुआ अणु धर्मास्तिकाय,

अधर्मास्तिकाय और आकाशास्तिकाय में संभावित ही नहीं है कारण वे सर्व व्यापी हैं । जबकि अलग अणु पुद्गलास्तिकाय में होता है, इससे पुदगलास्तिकाय के ४ भेद निम्न प्रकार से हैं -

१) पुद्गलास्तिकाय स्कंध २) पुद्गलास्तिकाय देश ३) पुद्गलास्तिकाय प्रदेश और ४) पुद्गलास्तिकाय परमाणु

इस तरह अजीव के १४ भेद हुअे ।

धर्मास्तिकाय	- ३
अधर्मास्तिकाय	- ३
आकाशास्तिकाय	- ३
काल	- १
पुद्गलास्तिकाय	- ४
कुल -	**१४ अजीव के भेद**

'' धम्मा s धम्मा युगल,
नह कालो पंच हुंति अजीवा ।
चलण सहावो धम्मो,
थिर संठाणो अहम्मो य ।।९।।

धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय, पुद्गलास्तिकाय, आकाशास्तिकाय और काल ये पांच अजीव हैं । चलन स्वभाववाला धर्मास्तिकाय है तो स्थिर रखने के स्वभाववाला अधर्मास्तिकाय है ।

अस्ति याने प्रदेश,

काय याने समुह

अस्तिकाय याने प्रदेशों का समुह । ऐसे प्रदेशों का समुह अस्तिकाय कहलाता है । जो धर्म-अधर्म-आकाश और पुद्गल में संभव है, इससे वे धर्मास्तिकाय - अधर्मास्तिकाय, आकाशास्तिकाय और पुद्गलास्तिकाय कहलाते हैं । काल द्रव्य के लिये यह संभवित नहीं इसलिये काल एक ही भेद सहित है । परिवर्तन स्वभाववाला नये को पुराना करने वाला है ।

ये पांच द्रव्य अजीव हैं ।

इनमें धर्मास्तिकाय गति देने के स्वभाववाला है । गति सहायक है । हम सबको चलने में सहायक बनता है । जो वातावरण में धर्मास्तिकाय न हो तो हम चल ही नहीं सकते ।

सिद्ध के जीव लोक के छोर पर जाकर अटक जाते हैं कारण कि आगे धर्मास्तिकाय का अभाव है ।

अधर्मास्तिकाय स्थिर रखने के स्वभाववाला है । वह हमें स्थिर रहने में सहायक बनता है ।

हम एक स्थान पर खडे रह सकते हैं.... बैठ सकते हैं इसमें अधर्मास्तिकाय सहायक बनता है ।

सिध्द के जीव अलोक के पास स्थिर रहते है, उसमें भी अधर्मास्तिकाय की ही सहायता है ।

''अवगाहो आगासं, पुग्गल जीवाण पुग्गला चउहा ।
खंधा, देस, पअेसा, परमाणु चेव नायव्वा ।।१०।।

गाथार्थ : अवकाश देने के स्वभाव वाला आकाशास्तिकाय है । जीव और पुद्गल को स्थान देता है । स्कंध, देश, प्रदेश और परमाणु ये चार प्रकार से पुद्गल निश्चय से जानना ।

आकाशास्तिकाय अवकाश देना है । हरेक जीव-अजीव को स्थान देने के स्वभाववाला है ।

पुद्गलास्तिकाय पूरन और गलन स्वभाववाला है ।

पूरन याने मिलना .... और गलन याने बिखरना ।

समय समय पर स्कंध के साथ दूसरे नये परमाणु जुडते रहते हैं और पुराने पुद्गल उससे अलग होते रहते हैं । सदा सर्वदा उसमें बदलाव होता रहता है । शायद हम भी उसमे समय समय पर सूक्ष्म बदलाव होता रहता है । शायद हमे वो सूक्ष्म बदलाव समझ न सकें फिर भी समय समय पर उसके वर्ण,गंध, रस, स्पर्श के २० भेद में कही न कहीं नये पुद्गल का मिलना और पुराने पुद्गल का बिखरना चालू ही रहता है । पुद्गलास्तिकाय के स्कंध, देश, प्रदेश और

परमाणु इस तरह चार भेद है ।

''सद्दंधयार उज्जोअ, पभा छाया तवेहिया ।
वण्ण गंध रसा फासा,
पुग्गलाणं तु लख्खणं ।। ११।।

गाथार्थ - शब्द, अंधकार, प्रकाश, ज्योति, छाया, आतप, वर्ण, गंध रस, स्पर्श ये पुद्गल के निश्चय से लक्षण हैं ।

पुद्गल के १० लक्षण बताते हैं -

१) शब्द - शब्द याने आवाज,ध्वनी,नाद । शब्द यह पुदगल का लक्षण है । ये शब्द तीन प्रकार के हैं - १) सचित-जीव मुख से बोले वह - जैसे कोयल का मोर का , कुत्ते का भोंकना, हमारा बोलना २) अचित शब्द - बर्तन वगैरह (अचित-अजीव) पदार्थो के घर्षण से, ठकराने से उत्पन्न होता नाद - शब्द । उदा. बर्तन गिरने से होता नाद - आवाज । ३) मिश्र शब्द - जीव के प्रयत्न से बजते संगीत के साधन उदा. शंखनाद, घंटनाद, तबला, बांसुरी वगैरह ।

२) अंधकार - अन्य दर्शन प्रकाश के अभाव को अंधकार कहते हैं । जबकि जैन शासन अंधकार को पुद्गल स्कंध मानता है । अंधकार पुद्गल रुप है और घ्राणेन्द्रिय से ग्राह्य है ।

३) उद्योत - प्रकाश - शीत वस्तु का शीत प्रकाश वह उद्योत है । उद्योत स्वयं पुद्गल स्कंध है । उद्योत नामकर्म के उदय से सूर्य के सिवाय चन्द्र, तारा, नक्षत्र वगैरह ज्योतिषी देवो के विमानो का, चंद्रकांत वगैरह रत्नो का, जुगनु वगैरह जीवों का शीत प्रकाश वह उद्योत है ।'

४) प्रभा - सूर्य-चंद्र के प्रकाश में से दूसराकिरणों रहित उपप्रकाश वह प्रभा है । प्रभा स्वयं पुद्गल के स्कंध स्वरुप है ।

५) छाया - दर्पण में, धूप में, प्रकाश में पडने वाला प्रतिम्बिब वो छाया है । छाया पुदगलस्वरुप है । पुदगल का लक्षण है ।

६) आतप - शीत वस्तु का उष्ण प्रकाश वो आतप है । उदा. सूर्य, सूर्यकांत मणि ।

७) वर्ण - श्वेत, लाल, पीला, नीला और कृष्ण (काला) ये पांच मूल वर्ण है । भेद प्रभेद बहुत हैं । एक परमाणु में एक वर्ण है । वर्ण के बिना परमाणु नहीं है । इससे यह उसका लक्षण है ।

८) गंध - सुगंध, दुर्गंध दो प्रकार की गंध प्रसिद्ध है । गंध बिना परमाणु नहीं है इससे यह पुद्गल का गुण है, लक्षण है ।

९) रस - तीखा, कडवा, तूरा, खट्टा, मीठा ये पाँच मूल रस हैं । रस बिना पुद्गल नहीं इससे यह उसका लक्षण है ।

१०) स्पर्श - शीत, उष्ण, स्निग्ध, रुक्ष, लघु, गुरु, मृदु, कर्कश ये आठ स्पर्श हैं । प्रत्येक पुद्गल में होने से ये उसका लक्षण है ।

''अेगा कोडी सतसट्ठि, लक्ख सत्तहुत्तरी सहस्साय ।
दोय सया सोलहिआ, आवलिया इग मुहुत्तम्मि ।।१२।।

एक करोड, सडसठ लाख, सत्तोतर हजार, दो सौ सोलह आवलिओ एक मुहुर्त में होती है ।

छोटा बालक बडा होता है अथवा वृध्द होता है तब शरीर रुपी पुद्गल में बहुत सारे बदलाव होते हैं । सुन्दर खूबसूरत बंगला बरसों बाद खंडहर बन जाता है, इसमें भी पुद्गल का स्वभाव काम करता है ।

केवली भगवंत की दृष्टि से भी जिसके दो भाग न हो सके ऐसे सूक्ष्म से सूक्ष्म अविभाज्य काल वो एक समय है ।

अति जीर्ण सहजता से फट जाय ऐसे वस्त्र को जल्दी से फाडते हुए एक तंतु से दूसरे तक फाडने में जो काल लगता है उसमें भी असंख्य समय निकल जाता है ।

आंख की पलक झपकने में भी असंख्य समय बीत जाता है । कमल की अति मुलायम, कोमल पंखुडियो की थप्पी (एक के उपर एक जमाई हुई शताधिक पंखुडियों को) को बलवान व्यक्ति तीक्ष्ण भाले की नोक से बींधे तब एक पंखडी को बींधने में जो काल लगता है उसमें भी असंख्य समय बीत जाता है । ऐसे अति सूक्ष्म काल का अविभाज्य घटक समय है । उपर के सभी दृष्टांत समय की सूक्ष्मता जानने और समझने के लिये कहे गये हैं । ऐसे असंख्यात समय की एक आवलिका होती है । ऐसी १,६७,७७,२१६ आवलिका का एक मुहुर्त होता है ।

''समयावली मुहुंत,
दीहा पख्खा य मास वरिसाय ।
भणिओ पलिया सागर,
उस्सप्पिणी सप्पिणी कालो ।।१३।।

समय, आवली, मुहुर्त, दिन पक्ष, महिना, वर्ष, पल्योपम, सागरोपम, उत्सर्पिणी, अवसर्पिणी रुपी काल है ।

व्यवहार काल का कोष्टक

अविभाज्य सूक्ष्म काल = १ समय
१ समय = १ जघन्य अन्तर्मुहुर्त
असंख्य समय = १ आवलिका
२५६ आवलिका = १ क्षुल्लक भव
साधिक १७।। भव = १ श्वासोश्वास (प्राण)
७ प्राण = १ स्तोक
७ स्तोक = १ लव
३८।। लव = १ घडी
७७ लव (३७७३ श्वासोश्वास) = १ मुहुर्त
१६७७७२१६ से अधिक आवलिका तथा दो घडी = १ मुहूर्त
३० मुहुर्त = १ दिन (अहोरात्रि)
१५ दिवस = १ पक्ष (पखवाडा)
२ पक्ष = १ मास
६ मास = १ उत्तरायण अथवा १ दक्षिणायन
२ अयन अथवा १२ मास = १ वर्ष
५ वर्ष = १ युग
८४ लाख वर्ष = १ पूर्वांग
७०५६०००००००००० वर्ष = १ पूर्व
असंख्य वर्ष = १ पल्योपम
१० कोडाकोडी पल्योपम = १ सागरोपम
१० कोडाकोडी सागरोपम = १ उस्तर्पिणी अथवा १ अवसर्पिणी
२० कोडाकोडी सागरोपम = १ कालचक्र
अनंत पुदगल परावर्तन काल = भूतकाल
भूतकाल से अनंत पुद्गल परावर्तन काल = भविष्यकाल
एक समय = वर्तमान काल
भूत - भविष्य - वर्तमान काल = अद्धाकाल

कालचक्र - कालचक्र

समय का चक्र अनादि काल से चालू है और वह अनंतकाल तक चालू रहनेवाला है । सभी धर्मो में काल की गिनती की पध्दतियाँ बताई गई हैं । जैन शास्त्रो के पास भी काल की गिनती की स्वयं की विशेष-सूक्ष्म और स्पष्ट पध्दति है ।

जैन शास्त्रों में बीस कोडाकोडी सागरोपम प्रमाण काल को एक कालचक्र कहते हैं । इस कालचक्र के १०-१० क्रोडाक्रोड सागरोपम प्रमाण वाले दो विभाग है १) उत्सर्पिणी काल - जिस काल में समय समय पर समस्त पदार्थो के वर्णादि गुणों में वृद्धि होती है वो उत्सर्पिणी काल कहलाता है ।

२) अवसर्पिणी काल :- जिस काल में समय समय पर पदार्थों के वर्णादी गुणों की अनुक्रम से हानि होती है वो अवसर्पिणी काल कहलाता है ।

इन दोनों उत्सर्पिणी तथा अवसर्पिणी काल के छः छः आरा (आरे) है । यानि कालचक्र के कुल बारह आरे होते है ।

अवसर्पिणी काल

अवसर्पिणी काल के छः आरे का संक्षिप्त स्वरुप इस प्रकार है -

१) सुषम सुषम नाम का प्रथम आरा चार कोडाकोडी सागरोपम के प्रमाणवाला है, इस आरे के मनुष्य तीन गाउ के शरीरवाले, तीन पल्योपम के आयुष्यवाले २५६ पसलीयों वाले, तीन-तीन दिन के अंतर पर भूख लगने पर तुवर की दाल प्रमाण भोजन कर संतुष्ट होने वाले होते हैं ।

दस प्रकार के कल्पवृक्ष इनकी इच्छाओं को पूर्ण करते हैं । इससे इस आरे के मनुष्य अत्यत्न सुखी होते हैं ।

आयुष्य के लगभग अंत समये वो एक पुत्र-पुत्री रुप युगल को जन्म देते हैं, उनन्नपचास दिन उनका पालन कर मृत्यु पाकर स्वर्ग में जाते हैं ।

२) सुषम नाम का दूसरा आरा तीन कोडाकोडी सागरोपम प्रमाणवाला है । इस आरे के मनुष्य दो गाउ के शरीर वाले, दो पल्योपम के आयुष्यवाले, १२८ पसलियों वाले, दो दो दिन के अंतर पर भूख लगने पर बोर प्रमाण भोजन कर संतुष्ट होने वाले होते हैं ।

इस प्रकार के कल्पवृक्षों से इच्छित को प्राप्त करने वाले इस आरे के मनुष्य भी सुखी होते है ।

आयुष्य के अंत में एक युगल को जन्म देकर चोसठ दिन अपत्य का पालन कर मृत्यु पाकर स्वर्ग में जाते हैं ।

३) सुषमदुषम नाम का तीसरा आरा, दो कोडाकोडी सागरोपम प्रमाणवाला है, इस आरे के मनुष्य एक गाउ शरीरवाले और ६४ पसलीयों वाले होते हैं । एक एक दिन के अंतरपर भूख लगने पर आंवले के प्रमाण जितना भोजन कर संतुष्ट होने वाले होते हैं ।

लगभग इस आरे के अंत तक कल्पवृक्ष होते हैं, इच्छित को देते हैं परंतु कल्पवृक्ष की संख्या घटते जाने पर दुख का मिश्रण होता है । सुख ज्यादा दुख कम होता है ।

आयुष्य के अंत में एक पुत्र-पुत्री रुप युगल को जन्म देकर (७९) उन्यासी दिन अपत्य का पालन कर मृत्यु पाकर स्वर्ग में जाते हैं ।

इस तीसरे आरे का पल्योपम का आठवां भाग जब बाकी रहे तब प्रथम कुलकर का जन्म होता है । आरे के चौर्याशी लाख पूर्व और तीन वर्ष साढे आठ महिने बाकी रहे तब प्रथम तीर्थंकर परमात्मा का जन्म होता है, प्रथम चक्रवर्तीकाभी इसी आरे में जन्म होता हैं ।

४) दुषम सुषम नाम का चोथा आरा बयालीस हजार वर्ष कम एम कोडाकोडी सागरोपम के प्रमाणवाला होता है । इस आरे में उत्कृष्ट आयुष्य क्रोड पूर्व वरस का तथा शरीर पाँचसो धनुष्य का होता है ।

इस आरे में युगलिक धर्म होता नहीं । इससे मनुष्य रुचि अनुसार भोजन करने वाले अनेक पुत्र-पुत्रिओं को जन्म देने वाले तथा कर्म करके पाँचो गति में जाने वाले होते हैं । इस आरे में छः संघयण और छः संस्थान जीवों को होते हैं ।

५) दुषम नाम का पाँचवा आरा इक्कीस हजार वर्ष प्रमाण होता है । इस आरे के मनुष्य का उत्कृष्ट आयुष्य १०० वर्ष से कुछ अधिक होता है । शरीर सात हाथ प्रमाण होता है ।

इस आरे में जन्मा हुआ कोई भी मनुष्य इस काल में मोक्ष में नहीं जा सकता । कर्मानुसार चारों गति में जीव जाते हैं ।

दुःख ज्यादा.... सुख अल्प होता है ।

अभी यह आरा चालू है ।

६) दुषम-दुषम नाम का छठवाँ आरा इक्कीस हजार वर्ष प्रमाण होता है । इस आरे के मनुष्य का उत्कृष्ट आयुष्य बीस वर्ष का तथा शरीर एक हाथ का होता है ।

इस आरे के मनुष्य अत्यंत ताप और शीत सहन न कर सकने के कारण वैताढय पर्वत की दक्षिण और उत्तर की तरफ रहे हुए गंगा सिंधु की गुफाओं में रहेंगे ।

मत्स्यादि का भोजन करने वाले, महाक्रोधी, निर्लज्ज, मर्यादाहीन और मरकर नरक आदि दुर्गति में जाने वाले होंगे ।

छः वर्ष की स्त्रीयां गर्भ धारण करेंगी ।

उत्सर्पिणी काल

इस अवसर्पिणी काल के छठवें आरे का जो वर्णन किया उसके जैसा ही उत्सर्पिणी काल का प्रथम आरा, पाँचवे जैसा दूसरा, चौथे जैसा तीसरा आरा तीसरे जैसा चौथा आरा, दूसरे जैसा पाँचवा आरा और पहले जैसा छठ्ठा आरा जानना ।

उत्सर्पिणी काल में दिन प्रति दिन समस्त पदार्थों के वर्णादि गुणों में वृद्धि होती है ।

प्रत्येक उत्सर्पिणी अवसर्पिणी काल में चोवीस तीर्थंकर बारह चक्रवर्ती नव बलदेव, नव वासुदेव तथा नव प्रतिवासुदेव मिल कर त्रेसठ शलाका पुरुष होते हैं ।

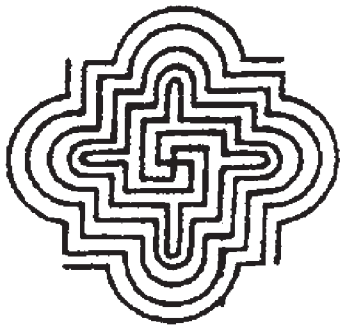

सागरोपम का प्रमाण

काल के भेद

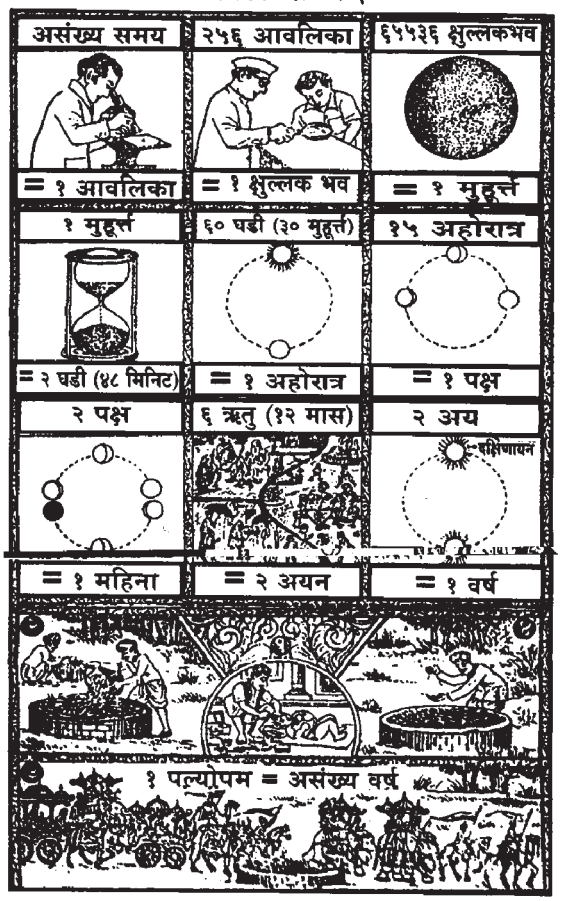

एक योजन का गहरा, लंबा और चौडा खड्डा खोडा जाय। उस खड्डेमें देवकुरु, उत्तरकुरु के सात दिन तक के जन्मे युगलिकों के एक बाल के २०,९८,१५२ टुकडे हों ऐसे एक टुकडे के असंख्यात असंख्यात अति सूक्ष्म टुकडे करें जिसके फिर से दो टुकडे न हो सके। ऐसे टुकडों से खड्डे को ठांस ठांस कर भरा जाय उसके उपर से चक्रवर्ती की सेना चली जाये, तो भी बाल जरा भी खिसके नहीं। फिर उस खड्डे में से सौ सौ साल में एक एक बाल का टुकडा निकाला जाय। जब यह खड्डा खाली होजाय तब एक पल्योपम का काल कहलाता है।

ऐसे दस कोडाकोडी पल्योपम का एक सागरोपम होता है।

ऐसे बीस कोडाकोडी सागरोपम का एक कालचक्र होता है।

इसमें धर्म का काल कितना ?

दो कोडाकोडी सागरोपम से कुछ अधिक, लगभग अठारह कोडाकोडी सागरोपम में तो धर्म है ही नहीं। नहीं देव....नहीं गुरु... नहीं धर्म.... हमें मौका मिला है.... लाभ लूट लें।

तीर्थंकरो की जीवन यात्रा

(श्री अजीजनाथ भ. से श्री सुपार्श्वनाथ भ. तक)

श्री अजितनाथ प्रभु भूतपूर्व तीसरे भव में जंबु महाविदेह में विमलवाहन राजा थे । उन्होंने वहाँ सम्यक्त्व पाकर संयम लेकर, बीसस्थानक तप की आराधना कर, तीर्थंकर नामकर्म बांधकर विजय नामक विमान में देव हुए । वहाँसे अयोध्यापुरी में जितशत्रु राजा की विजया रानी के उदर में महासुदी तेरस को आये । चौद स्वप्न सूचित प्रभु वैशाख सुदी आठम को जन्मे । हस्ति लांछनवाले, सुवर्ण कांतिवाले, चारसो पचास धनुष्य की उंचाई वाले प्रभु अठारह लाख पूर्व कुमार अवस्था में रह कर, एक पूर्वांग सहित तिरपन लाख पूर्व राज्य का पालन कर, सांवत्सरिक दान देकर महासुदी नवमी को एक हजार राजाओं के साथ दीक्षा लेकर, बारह साल छद्मस्थ रहकर, एक पूर्वांग कम एक लाख पूर्व दीक्षा पालकर, कुल बहत्तर लाख पूर्व आयुष्य भोगकर समेतशिखर पर मासिक अनशन कर, चैत्र सुदी पंचमी को एक हजार मुनिवरों के साथ मोक्ष गये ।

अजीतनाथ प्रभु को सिंहसेन आदि पिचानवे गणधरों के साथ एक लाख साधु, फाल्गु आदि तीन लाख तीस हजार साध्वियाँ, दो लाख अठ्यानवे हजार श्रावक और पाँच लाख पिस्तालीस हजार श्राविकायें इतना परिवार था । शासन रक्षक महायक्ष यक्ष और अजितबला यक्षिणी थे ।

❖ श्री संभवनाथ प्रभु पहले तीसरे भव में धातकी खंडके ऐरावत क्षेत्र में विपुलवाहन राजा थे । वे वहाँ सम्यक्त्व पाये । संघ भक्ति कर बीस स्थानक की आराधना की, तीर्थंकर नामकर्म बाँधा और नौवे देवलोक में देव हुए । वहाँसे श्रावस्ती नगरी में जितारी राजा की सेनादेवी रानी के उदर में फाल्गुन सुदी आठम को आये । चौदह सपनों से सूचित प्रभु मागसर सुदी चौदस को जन्मे । अश्व लांछनवाले, सुवर्ण कांतिवाले, चारसौ धनुष्यकी उंचाईवाले प्रभु पंद्रह लाख पूर्व कुमारावस्था में रहे, चार पूर्वांग सहित चौवालीस लाख पूर्व राज्य किया, फिर सांवत्सरिक दान देकर एक हजार राजाओं के साथ मागसर सुदी पुनम को दीक्षा लेकर, चौदह वर्ष छद्मावस्था में रहे । कार्तिक वदी पंचमी को श्रावस्तीमें केवलज्ञान पाये । बहुत भव्यात्माओं को तिराकर चार पूर्वांग कम एक लाखपूर्व वर्ष दीक्षा पाली । साठ लाख पूर्व संपूर्ण आयुष्य भोगकर समेतशिखर पर्वत पर मासिक अनशन के साथ एक हजार मुनिवरों के साथ चैत्र सुदी पंचमी को मोक्ष सिधाये ।

संभवनाथ प्रभुके चारु आदि एकसो दो गणधरों के साथ दो लाख साधु, श्यामा आदि तीनलाख छत्तीस हजार साध्वियाँ, दो लाख तिराणवे हजार श्रावक और छ लाख छब्बिस हजार श्राविकाअें इतना परिवार था । शासन रक्षक त्रिमुख यक्ष और दुरितारि यक्षिणी थे ।

❖ श्री अभिनंदन प्रभु पहले के तीसरे भव में जंबुमहाविदेह में महाबल राजा थे । वे वहाँ सम्यक्त्व पाये, दिक्षा ली, बीस स्थानक की आराधना की, तीर्थंकर नामकर्म बांधा । विजय विमानमें देव बने । वहाँ से अयोध्यामें संवरराजा की सिद्धार्थ रानी के उदरमें वैशाख सुदी चौथ को आये । चौद स्वप्नों से सूचित प्रभु महा सुदी बीज को जन्मे । कपि लांछनवाले, सुवर्ण कांतिवाले, साढे तीन सौ धनुष्य उंचाईवाले प्रभु साढे बारा लाख पूर्व साल कुमार

अवस्था में रहे । साढे छत्तीस लाख पूर्व और आठ पूर्वांग राजा रहे । पश्चात सांवत्सरिक दान देकर महासुदी बारस को एक हजार राजाओं के साथ दीक्षा ली । अठ्ठारह वर्ष छद्मस्थ रहे । अयोध्यामें पोष सुदी चौदस को केलवज्ञान पाये ।

बहुत भव्यात्माओं को तिराकर आठपूर्वांग कम एक लाख पूर्व वर्ष दीक्षा पाली । एक मास का अनशन कर एक हजार मुनिवरों के साथ समेतशिखर पर मोक्ष गये । निर्वाण का दिन वैशाख सुदी आठम था । उनका आयुष्य पचासलाख पूर्व वर्ष था । प्रभुके वज्रनाभ आदि एकसो सोलह गणधर थे । तीन लाख साधु, अजिता आदि छ लाख छत्तीस हजार साध्वियाँ थी । दो लाख अठ्ठाइस हजार श्रावक, पाँच लाख सत्ताइस हजार श्राविकाअें ऐसा कुल परिवार था । शासन रक्षक यक्षेश्वर यक्ष और काली यक्षिणी थे ।

❖ श्री सुमतिनाथ प्रभु पहले के तीसरे भव में जंबुमहाविदेह में पुरुषसिंह राजपुत्र थे । उन्होंने वहाँ सम्यक्त्व पाया, दीक्षा ली, बीस स्थानक की आराधना की, तीर्थंकर नामकर्म बाँधा और वैजयंत विमान में देव बने । वहाँ से च्यवकर विनीतापुरी के मेघराजा की मंगलाराणी के उदर में श्रावण सुदी बीज को आये । चौदह स्वप्नोंसे सूचित प्रभु वैशाख सुदी आठम को जन्मे । क्रौंच लांछनवाले, सुवर्ण कांतिवाले, तीनसौ धनुष्य की उंचाईवाले प्रभु दश लाख पूर्व कुमार अवस्था में रहे, उन्तीस लाख पूर्व और बारह पूर्वांग राज्य भोगा एवं सांवत्सरिक दान देकर वैशाख सुदी नवमी को एक हजार राजाओं के साथ दीक्षा ली । बीस वर्ष छद्मस्थ रहे । विनितापुरी में चैत्र सुदी ग्यारस को केवलज्ञान प्राप्त किया । बहुत भव्य आत्माओंको तिराया । बारह पूर्वांग कम एक लाख पूर्व व्रत धारणा में रहे ।

इस तरह चालीस लाख पूर्व पूर्ण आयुष्य भोगा । एक हजार मुनिओं के साथ मासिक अनशन कर सम्मेतशिखर पर चैत्र सुदी नवमी को मोक्ष सिधारे । प्रभुका चमर आदि एक सौ गणधरों सहित तीन लाख बीस हजार साधु, पाँच लाख तीस हजार साध्वियाँ एवं दो लाख इकास्सी हजार श्रावक और पाँच लाख सोलह हजार श्राविकायें इतना परिवार था । शासन रक्षक तुंबरुयक्ष और महाकाली यक्षिणी थे ।

❖ श्री पद्मप्रभु स्वामी पहले के तीसरे भव में धातकीखंड महाविदेह में अपराजित राजा थे । वहाँ सम्यक्त्व प्राप्त कर दीक्षा लेकर बीस स्थानक आराधा एवं तीर्थंकर नामकर्म बाँधा । और वे नवमे ग्रैवेयक में देवपणे को प्राप्त हुए । वहाँ से कौशांबी पुरी में धर नामक राजाके सुसीमा रानी के उदर में पोष वदि छट्ठ को आये । चौदह स्वप्न सूचित प्रभु आश्विन वदि बारस को जन्मे । कमल लांछनवाले, रक्तकमल कांतिवाले, ढाई सौ धनुष्य उंचाईवाले प्रभु साढे सात लाख पूर्व कुमारावस्था में रहे । उनका राज्यकाल साढे इक्कीस लाख पूर्व और सोलह पूर्वांग था । सांवत्सरिक दान दिया, एक हजार राजाओं के साथ अश्विन वदि तेरस को दीक्षा ली, छः महिने छद्मस्थ रहे, चैत्र सुदी पूनम को कौशंबी में केवलज्ञान प्राप्त किया । बहुत भव्यजीवों को तिराया सम्मेत शिखर पर एक मास का अनशन कर तीनसौ आठ मुनियों के साथ कार्तिक वदि ग्यारस को मोक्ष सिधारे, उनका दीक्षा पर्याय सोलह पूर्वांग कम एक लाख पूर्व का था । प्रभु का आयुष्य तीस लाख पूर्व वर्ष का था । प्रभु को सुव्रत प्रमुख एक सौ सात गणधर थे । तीन लाख तीस हजार साधु, चार लाख बीस हजार साध्वीयाँ, दो लाख छिहत्तर हजार श्रावक और पाँच लाख पाँच हजार श्राविकायें इतना परिवार था । शासन रक्षक कुसुम यक्ष और अच्युता याक्षिणी थे ।

❖ श्री सुपार्श्वनाथ प्रभु पूर्व के तीसरे भव में धातकीखंड के महाविदेह में नंदिषेण राजा थे । वहाँपर सम्यक्त्व पाकर दीक्षा ली । बीस स्थानक आराधा । तीर्थंकर नामकर्म बांधा । छट्ठे ग्रैवेयक में देव हुए । वहाँसे वाराणसी पुरी में प्रतिष्ठ राजा की पृथ्वीरानी के उदर में श्रावण वदि आठम को आये । चौदह स्वप्न सूचित प्रभु जेष्ठ सुदी बारस को जन्मे । स्वस्तिक लांछनवाले, सुवर्ण कांतिवाले दो सौ धनुष्य उंचाईवाले प्रभु पांच लाख पूर्व कुमारावस्था में रहे । चौदह लाख पूर्व और बीस पूर्वांग राज किया । सांवत्सरिक दान देकर जेष्ठ सुदी तेरस को एक हजार राजाओं के साथ दीक्षा ली । नौ मास छद्मस्थ रहे । महावदि छठ को वाराणसी में कैवल्य ज्ञान प्राप्त हुआ । अनेक भव्यात्माओं को तिराकर एक लाख पूर्व कम बीस पूर्वांग दीक्षा पाली । संपूर्ण आयुष्य बीस लाख पूर्व का रहा । सम्मेतशिखर पर पाँच सौ मुनियों के साथ एक मास का अनसन कर मोक्ष सिधारे । प्रभु को विदर्भ आदि पिचानवे गणधर थे । तीन लाख साधु, सोमा आदि चार लाख तीस हजार साध्वियाँ, दो लाख सत्तावन हजार श्रावक और चार लाख तिरानवे हजार श्राविकायें इतना परिवार था । शासन रक्षक मातंग यक्ष और यक्षिणी शांती थी ।